पात्र परिचय

१. बलि

सतयुग में दैत्यराज हिरण्यकशिपु तथा उनके भाई हिरण्याक्ष ने घोर तपस्या कर ब्रह्मा जी से असीमित शक्तियाँ वर रूप में प्राप्त कीं। शक्तिशाली और अजेय होने पर वे देवताओं तक को पीड़ित करने लगे और समस्त पृथ्वी और स्वर्गलोक पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इन भाइयों के विनाशार्थ और लोककल्याणार्थ भगवान विष्णु को दो अवतार लेने पड़े। हिरण्याक्ष द्वारा में रसातल में ले जाई गई पृथ्वी के उद्धार के लिए वराह अवतार और हिरण्यकशिपु से अपने परम भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा। यह पहली घटना है जिसमें दो भाइयों को मारने के लिए समान काल में ही भगवान विष्णु को दो अवतार लेने पड़े। प्रह्लाद परम वैष्णव थे, उनसे विरोचन उत्पन्न हुआ जो महामना थे। विरोचन के पुत्र बलि हुए जो पराक्रम, उदारता, दानवीरता और प्रतिज्ञा-बद्धता के चरम उदाहरण रहे हैं। उन्होंने इन्द्र को सत्ताच्युत कर स्वर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन्द्र उनके भय से इधर-उधर भटकने लगे, तब माता अदिति और कश्यप ऋषि से भगवान विष्णु ने वामन अवतार धारण किया।

सतयुग की यह घटना कूर्म पुराण के १६वें अध्याय में तथा श्रीमद्भागवद् पुराण में वर्णित है। कूर्म पुराण अठारह पुराणों में से पन्द्रहवाँ है, जिसमें ६००० श्लोक और ६५ अध्याय हैं।

वामनावतार की कथा का उल्लेख इस प्रकार है-

> काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्धनम् ।
> असूत कश्यपाच्चैनं देवमातादितिः स्वयम् ।। १६/४१
>
> समप्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः ।
> स्वपादैर्विमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः ।। १६/५०

महाराज बलि द्वारा तीन पग भूमि देने का संकल्प करने पर वामन विराट हो गये और पृथ्वी और अंतरिक्ष को दो पैरों में ही नाप लिया, तीसरे के लिए स्थान माँगा तो बलि शरणापन्न हो गये। तब भगवान ने प्रसन्न होकर पहले तो उन्हें बाँध लिया और फिर पाताल लोक का शाश्वत राज्य देकर अपनी भक्ति का वरदान

दिया।

> जगाद दैत्यं जगतन्तरात्मा,
> पातालमूलं प्रविशेति भूयः ।। १६/६१।।
>
> ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्,
> प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ।। १६/६२।।

महाराज बलि पर लिखी गयी सबसे प्राचीन रचना संभवतः पाणिनि की थी, जिसका उल्लेख महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में बलि बंध नाम से किया है, जो एक नाटक था, यह अप्राप्य है।

इस विषय पर संस्कृत में लिखी गयी नवीनतम रचना श्री राजेन्द्र मिश्र अभिराज द्वारा लिखित 'वामनावतरणम्' महाकाव्य है, जिसमें १७ सर्गों में यह रुचिर कथा वर्णित है।

हिंदी साहित्य में इस प्रसंग का उल्लेख करने वाली एक ही रचना मेरी दृष्टि में आयी है, जो है श्री हर दयाल सिंह द्वारा लिखित 'दैत्यवंश' महाकाव्य जो सन् १६४० में प्रकाशित हुआ और जो बृजभाषा में लिखा गया।

इन्द्र से पराजित बलि निराश हो गुरु शुक्राचार्य के पास जाते हैं और उनकी सम्मति से विश्वजित नामक यज्ञ करते हैं। देवगुरु बृहस्पति देवताओं को पलायन कर जाने की सलाह देते हैं, क्योंकि भोगवादी देवताओं में प्रतिरोध की शक्ति नहीं है। बिना युद्ध के बलि स्वर्ग जीत लेते हैं। भृगुवंशी कुलपुरोहितों ने बलि की यशवृद्धि के लिए सौ अश्वमेघ यज्ञ कराए। वामनावतरणम् में उल्लेख है कि उदार राजा बलि के काल में प्रजा बड़ी सुखी और संतुष्ट थी किन्तु देवताओं के दुःख निवारण के लिए भाद्रपद महीने के शुक्ल पक्ष, द्वादशी तिथि को अभिजित नक्षत्र में मध्याह्न वेला में कश्यप की पत्नी अदिति से भगवान विष्णु ने वामन अवतार ग्रहण किया। कालान्तर में भगवान उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ दैत्यराज बलि यज्ञ कर रहे थे। उस स्थान का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

> ददर्श रेवोत्तर तीर संस्थिते,
> पवित्र देशे भृगुकच्छ संज्ञके ।
> महाश्वमेघं प्रथितं क्रतूत्तमं,
> बलिंच दैत्याधिपतिं रविप्रभम् ।। २४/८।।

स्पष्ट है कि यह अश्वमेघ यज्ञ नर्मदा नदी के उत्तरी किनारे पर भृगुकच्छ (आधुनिक भड़ोंच, जो गुजरात राज्य में है) किया जा रहा था। वामन वेशधारी

विष्णु उनसे तीन पग धरती की याचना करते हैं। प्रारंभ में दैत्यराज उनकी वाणी सुनकर हँसते हैं कहते हैं कि मुझ त्रिलोकपति से तीन पैर धरती क्यों माँग रहे-

एकातपत्रं त्रिजगत्प्रभुं मां,
संचायसे किं त्रिपदां धरित्रीम् ।। ६/२६।।

क्योंकि दान तो वहीं है जो इच्छा को पूरी तरह समाप्त कर दे। "दानं तु वांछान्तकरं प्रशस्तम्।" इस पर भगवान कहते हैं जो प्राणी स्वयं में भी परितुष्ट है, वह जो कुछ मिल जाए उसी में सुखी हो जाता है, परन्तु जिसके मन में संतोष नहीं वह तीनों लोकों से भी तुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। बलि दान देने को उद्यत होते हैं तब उनके गुरु शुक्राचार्य उन्हें सावधान करते हुए कहते हैं - पुत्र प्रमाद न करो, इन्हें पहचानों, ये विष्णु हैं। तुम्हारे ऐश्वर्य के नाश के लिए वामन रुप में आए हैं। वे कहते हैं कि वह दान निन्दनीय है, किन्तु बलि गुरुदेव के वचनों की उपेक्षा कर देते हैं और दान देने की अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहते हैं वे कहते हैं कि मैं अपनी वंश कीर्ति को कलंकित नहीं करूँगा-

ऋतञ्च सत्यञ्च विधूय नाहं ।
कलंकितं वंशयशो विधास्ये ।
स्वसौख्य गुंजाफलवर्ण लुब्धो ।
न काञ्चनं धर्मपंथ ग्रसिष्ये ।।११/ ८

इस पर शुक्राचार्य कुपित होकर उसे शाप दे डालते हैं कि मेरे वचनों की अवमानना करने वाले तुम शीघ्र ही राज्यच्युत हो जाओगे। किन्तु बलि अविचल रहते हैं। भगवान विराट रूप रखकर दो पैरों से ही पृथ्वी और अंतरिक्ष को नाप लेते हैं, तीसरा चरण बलि अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वचन भंग होने के कारण वे वरुणपाशों में जकड़ दिए जाते हैं किन्तु ईश्वर की कृपा से उन्हें ज्ञान होता है, परीक्षा पूर्ण होती है, ऐश्वर्य का दर्प दूर होता है, अभिमान शून्यता आती है, भोग-वासना चली जाती है और भक्ति का स्रोत उमड़ता है। भगवान उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अभय देते हैं और कहते हैं कि तुम वैष्णवों में प्रमुख और ज्ञानियों में अग्रगण्य हो। तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हें पाताल लोक का अधिपति बनाता हूँ। भविष्य में दिव्य सावर्णि मन्वन्तर आने पर तुम इन्द्र बनोगे -

तस्मान्मा गा अल्पमात्रं विषादं ।
बुध्वा सर्व तन्मदिच्छाविलासम् ।
ऐन्द्रीं ख्यातिं यास्यसि त्वं भविष्ये ।
सावर्णये दिव्यमन्वन्तराले ।।१४/२१।।

इस प्रकार बलि पाताल लोक के अधिपति बनाए गए, वे चिरंजीवी हैं और कल्पान्त तक राज्य करेंगे तथा दिव्यसावर्णि मन्वन्तर में उन्हें इन्द्र पद मिलेगा।

बलि को पाताल लोक भेजने का उल्लेख महाकवि केशव दास ने अपने ग्रन्थ 'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार किया है, जहाँ रावण के दूत को छद्म संधि प्रस्ताव का उत्तर राम ने इस प्रकार दिया -

भूमि दई भुवदेवन को, भृगुनंदन भूपन सो बर लैकै ।
बामन स्वर्ग दिया मधवै, सो बली बलि बाँधि पताल पठैकै ।
संधि की बातन को प्रति उत्तर, आपुन ही कहिए हितकै ।
दीन्ही है लंक विभीषण को, अब देहि कहा तुमको वह दैकै ।।

- २१/१६ वाँ१६ वाँ प्रकाश

अध्यात्म रामायण में बलि की गणना सात चिरन्जीवियों में की गई है।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमान्श्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ।।

२. हनुमान

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि हनुमान सात चिरंजीवियों में से एक हैं। सुमेरु प्रदेश के अधीश्वर वानरराज केशरी और अंजना देवी से उनका जन्म हुआ। वे रुद्रावतार बताए गए हैं। सूर्य को पकड़ने जब बालकपि जा रहे थे तो राहु, जो सूर्य को ग्रसना चाहता था, भयभीत होकर भागा और इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र अपने ऐरावत पर चढ़कर आए तो बालक ने ऐरावत को पकड़ना चाहा। इन्द्र ने कुपित होकर उन पर वज्र का प्रहार कर दिया, जो उनकी ठोढ़ी को भग्न कर गया, बांयी ओर की हड्डी टूट गई, इन्द्र के कृत्य से वायुदेव कुपित हो गए, प्राणवायु खींचने लगे, सब प्राणी व्याकुल हो गए, तब ब्रह्मा जी के नेतृत्व में सभी देव वायुदेव के पास गए, उन्हें प्रसन्न किया और हनुमान जी को अनेक वर दिए। इन्द्र ने उनका नाम हनुमान रखा -

मत्करोत्सृष्ट वज्रेण हनुरस्या यदा हतः ।
नाम्ना वै कपि शार्दूलो भविता हनुमानिति ।।

- वाल्मीकि रामायण ७ । ३६ । ७१

वायु पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि हनुमान जी के रूप में स्वयं शिव ही प्रकट हुए थे उनका जन्म समय भी वर्णित है। कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशी को स्वाति नक्षत्र

में मेष लग्न में उन्होंने जन्म ग्रहण किया -

आश्विन स्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतः ।
मेष लग्ने अन्जनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः ।। **- वायु पुराण।।**

गोस्वामी तुलसीदास भी उन्हें रुद्रावतार मानते हैं -

जयति मंगलागार संसारभांरापहर वानराकार विग्रह पुरारी।
विनय पत्रिका - २७/१

शिवपुराण में भी देवतागण भगवान शंकर की विभूतियों का वर्णन करते हुए कहते हैं -

आदित्यानां वासुदेवो हनुमान् वानरेषु च।

श्री हनुमान जी एकादश रुद्रों में ग्यारहवें रुद्र हैं।

पंडित दीनानाथ शर्मा जी का का मत है कि वायुपुत्र होने पर भी हनुमान वस्तुतः शंकर सुवन ही सिद्ध होते हैं, क्योंकि शिव की अष्ट मूर्तियों में उग्र मूर्ति वायु स्वरूप ही तो है -

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ।। **-शिवपुराण**

गोस्वामी तुलसीदास जी पुनः दोहावली में लिखते हैं कि श्री विष्णु जी पर प्रीति के कारण रूद्र ने हनुमान के रूप में वानर शरीर धारण किया -

जेहि शरीर रति राम सौं, सोई आदरहिं सुजान ।
रुद्र देह तजि नेह बस, वानर भे हनुमान ।।

शिवपुराण में ही शतरुप संहिता में स्पष्ट लिखा है -

ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक् ।
शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबल पराक्रमः ।। **- शतरुद्र संहिता २० / ७**

नारद पुराण में भी उनके शिवावतार होने का उल्लेख है -

प्रसन्न मूर्तिस्तरूणः शिवांशः। - नारद पुराण पूर्व तृ. ७८ / २०
लोकोत्तर गुणः श्रीमान् पातु त्रयम्बक सम्भवः। - ७४ / १२४

उधर हनुमन्नाटक में उल्लेख है -

किष्किन्धाद्रौ रौद्ररुद्रावतारम् ।
दृष्टवा रामो मारुतिं वाचमूचे ।।

बालक हनुमान ने सूर्यदेव से शिक्षा प्राप्त की और अनायास ही सभी विद्याओं में विद्वान् हो गए-

तदाज्ञया ततो धीरः सर्वविद्यामयत्नतः ।
सूर्यात् पपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम् ।।

- शिवपुराण ३/२०/११

फिर सूर्यदेव की आज्ञा से ही वे उनके अंश से उत्पन्न सुग्रीव के पास रहने लगे और उनके हितों की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहे। सुमेरु के राज्य का उत्तराधिकार उन्हें किंचित भी न लुभा सका -

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यांन्तिकं ययौ ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांश कपि सत्तमः ।। - शिवपुराण ३/२०/१२

उधर श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि श्रीकृष्ण उद्धव जी से अपनी विभूतियों वताते हुए कहते हैं किंपुरुषों में मैं हनुमान हूँ -

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ।
किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ।।

- श्रीमद्भागवत् ११/१६/२६

इससे प्रतीत होता है कि मानवों की ही जाति विशेष जो मानव सदृश होते थे, वे किष्किन्धा और सुमेरु राज्यों पर राज्य करते थे और हनुमान का स्वरूप भी किंपुरुषों जैसा था। उनके अविश्वसनीय कार्यों को देखकर रावण ने भी ठीक ही अनुमान लगाया था कि यह कोई महाशक्ति वानर शरीर में प्रादुर्भूत है और इसे कपि नहीं माना जा सकता -

न ह्यहं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन् । - ५/४६
महत्सत्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् । - ५/४६/१४

-वाल्मीकि रामायण

बल, विद्या, बुद्धि और ज्ञान के सागर -

भगवान राम अगस्त्य जी से कहते हैं कि बालि और रावण में अतुल बल था किन्तु इन दोनों में भी हनुमान जितना बल नहीं था -

अतुलं बल मेतद् वै बालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समंत्विति मतिर्मम् ।।

-वाल्मीकि रामायण ७/३५/२

वे आगे कहते हैं कि शूरवीरता, बल, धैर्य, ज्ञान, नीति तथा विक्रम व प्रभाव हनुमान में निवास करते हैं -

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नय साधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः।।

-वाल्मीकि रामायण ७/३५

वे सद्‌गुणों के आगार हैं, विविध शास्त्रों में यह वर्णित है। स्कंद पुराण में हनुमान जी की महिमा बताते हुए कहा गया है -

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापैः
सौशील्य माधुर्यनयादिकैश्य ।
गांभीर्य चातुर्य सुवीर्य धैर्यो,
हनूमतः कोऽप्याधिकोऽस्ति लोके ।।

वाल्मीकि जी उन्हें वेदों का ज्ञाता बताते हैं। किष्किन्धा काण्ड में ऋष्यमूक पर्वत से सुग्रीव जब राम लक्ष्मण को धनुर्धर देखकर शंकित होते है तो हनुमान जी उनका परिचय पूछने विप्र रूप धारण करके जाते है। उनके वाक्‌चातुर्य से ही सुग्रीव से श्री राम की मैत्री, सुग्रीव द्वारा पुनः राज्य प्राप्ति और वानरों द्वारा प्रभु की सीता जी की खोज में सहायता संभव होती है। श्री राम लक्ष्मण जी से उनकी प्रगल्भता तथा वाक्‌चातुर्य की प्रशंसा करते है।

गोस्वामी जी ने उन्हें विशुद्ध ज्ञानरूप मानते हैं -

वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ।।

पद्‌मपुराण में उनकी उनके गुणों की चर्चा इस प्रकार हैं -

सिद्ध विद्यः प्रभावाढ्यो विनयज्ञो महाबलः ।
सर्वशास्त्रार्थ कुशलः परोपकृतिदक्षिणः ।।

वाल्मीकि जी भी उन्हें सर्व शास्त्रों का ज्ञाता कहते हैं -

वीर वानर सलोकस्य सर्वशासत्रविदां वरः।

सुमेरु राज्य का उत्तराधिकार ठुकराकर मित्र सुग्रीव के हित साधन में निःस्वार्थ भाव से निरत रहते हैं और ईश्वर सेवा को अपना जीवन-ध्येय बना लेते हैं। सीता

जी को अपना परिचय देते समय वे अपनी दो ही भूमिकाओं का उल्लेख करते हैं-

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ।
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभ प्रदे ।।

अध्यात्म रामायण ५/३/२३-२४

सीता जी के अन्वेषण, राक्षसों के मर्दन और लंकादाह के उपरान्त लौटे श्री हनुमान जी की प्रशंसा श्री राम करते हैं तो वे विनम्रतापूर्वक कहते हैं -

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

- मानस ५/३/४

सुग्रीव से मित्रता का निर्वाह वे अंत तक करते हैं, बालि जैसे परम वीर से विरोध मोल लेते हैं, राम से मिलकर अपने मित्र का कल्याण करवाते हैं, किन्तु राज्य प्राप्त होने पर विलास में डूबे सुग्रीव को सावधान भी करते हैं। रावण तक को सदुपदेश उसके कल्याण हेतु देने में वे संकोच नहीं करते हैं -

मोह मूल बहुशूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।

भक्ति के रहस्य को वे जानते हैं, नारद के समान वे भी भक्ति मार्ग के आचार्य हैं और दास्य भक्ति के प्रकृष्ट प्रतिमान हैं। वे मानते हैं कि भक्ति से जब परमानन्द और स्वयं परमात्मा प्राप्य हैं, तब अन्य वस्तुओं की क्या आवश्यकता। सीता और राम उन्हें वर माँगने का आग्रह करते हैं, किन्तु भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते-

नाथ भगति अति सुख दायिनी। देहु कृपा कर अनपायिनी।।

भक्ति के आचार्य होते हुए भी अद्वैत वेदान्त का ज्ञान हमें अध्यात्म रामायण में देखने को मिलता है -

देह दृष्टया तु दासोऽहं जीवदृष्टया त्वदंशकः ।
आत्मदृष्टया त्वमेवाहमिति में निश्चितामतिः ।।

अग्निपुराण के २३८ से २४२ वें अध्याय पर्यन्त दिए गए वर्णन में रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी को राजनीति का उपदेश देते हैं, वहाँ राजदूत के गुणों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

प्रगल्भः स्मृतिवान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः ।
अभ्यस्त कर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ।।

ये सभी गुण हनुमान जी में प्रकट रूप में विद्यमान हैं। श्री हनुमान जी आठों सिद्धियों के स्वामी हैं। कभी अणिमा का सहारा ले वे "मसक समान रूप कपि धरी" हो जाते हैं तो कभी महिमा का उपयोग कर "कनक भूधराकार शरीरा" भी हो जाते हैं, गरिमा का प्रयोग करते हैं तो भीम जैसे महाबली (द्वापर युग में)। गंधमाधन पर्वत पर उनकी पूँछ तक नहीं उठा पाते -

न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः।। **- महाभारत ३/१४७/१५**

अपने गुणों और कार्यो से उन्होंने भगवान राम को अपना ऋणी बना लिया। बाल्मीकि रामायण में उल्लेख है, राम कहते हैं कि तुम्हारे उपकारों का बदला मैं प्राण देकर भी नहीं चुका सकता। वे उन्हें चिरजीविता तथा कल्पांत में सायुज्य मुक्ति का वरदान देते हैं -

मारुते त्वं चिरंजीव ममाज्ञया मृषा कृथाः ।
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यते नात्र संशयः ।।

- अध्यात्म रामायण ६/१६/१५

फिर जानकी जी वर देने में कैसे पीछे रहतीं, उन्होंने भी कहा -

आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बलशील निधाना।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुं बहुत रघुनायक छोहू।।

- मानस ५/१६/१

हनुमान विनम्रता पूर्वक कहते हैं कि जब तक लोक में आपकी पावन कथा प्रचलित रहेगी, मैं शरीर धारण रहूँगा।

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ।
तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।।

बाल्मीकि रामायण ७/१०८/३५

फिर रामचन्द्र जी से विदा लेकर अश्रुपूरित नेत्रों से वे हिमालय पर तप करने चले गए -

आनन्दाश्रुपरीतोऽसौ भूयो भूयः प्रणम्य नौ ।
कृच्छाद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवतं महामतिः ।।

- अध्यात्म रामायण ६/१६/१५

अगस्त्य जी कहते हैं कि हनुमान श्री राम जी की कृपा से अगले कल्प में ब्रह्मा होंगे -

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने,
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता,
ब्रह्माभविष्यत्यपि ते प्रसादात्।।

- वाल्मीकि रामायण ७/३६/४७

हनुमान जी के दिव्य कर्म त्रेता तक ही सीमित नहीं हैं, द्वापर में वे नर नारायण स्वरूप अर्जुन व कृष्ण के रथ की ध्वजा पर आसीन रहते हैं। गर्ग संहिता के विश्वजित खंड के ३०वें अध्याय में वर्णन है कि भीम नादिनी नगरी का कलंक नामक राक्षस यादवों से लड़ने आया, कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र जब उससे हारने लगे, तो उन्होंने कपीन्द्रास्त्र का अनुसंधान किया, तो हनुमान जी ने प्रकट होकर उस दुर्जय राक्षस को मार डाला।

महाभारत के वनपर्व के १४६ से १५० वें अध्यायों में वर्णन आता है कि किस प्रकार सौगन्धिक कमल लाने हेतु गंधमादन पर्वत पर गए भीम का बलाभिमान उन्होंने चूर किया और उन्हें उपदेश दिया। यह उपदेश राजनीति की मर्मज्ञता प्रकट करते हैं।

३. भगवान परशुराम

भारतीय काल गणना के अनुसार सतयुग १७,२८,००० वर्ष का, त्रेता १२,९६,००० वर्ष, द्वापर ८,६४,००० वर्ष और ४,३२,००० वर्ष के कहे गए हैं। चारों युगों को मिलाने पर एक चतुर्युगी होता है, जिसका विस्तार ४३,२०,००० वर्ष होता है। ऐसे एक हजार चतुर्युगी व्यतीत होने पर एक कल्प होता है, जो ब्रह्मा का एक दिन है। ब्रह्मा के एक दिन में अर्थात एक कल्प में चौदह मनवन्तर होते हैं, अर्थात चौदह मनुओं का शासन होता है और एक मनवन्तर ७१ चतुर्युगी के बराबर होता है।

पुराणों के अनुसार वर्तमान कल्प श्वेतवाराह कल्प कहलाता है। अभी वैवस्वत मनु का शासन है। एक कल्प में धर्म रक्षार्थ प्रभु के आवतार अनेक बार होते हैं। वर्तमान चतुर्युगी में चौबीस अवतार होंगे, जिसमें से दस महावतार हैं। इनमें मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और भगवान बुद्ध का अवतार हो चुका है। दसवाँ अवतार कल्कि जी का अभी होना है। भगवान परशुराम दशावतारों में प्रमुख हैं।

श्रीमद्भागवद्, विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण में उन्हें भगवान विष्णु का सोलहवाँ अवतार बताया है। स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खण्ड में भगवान परशुराम को पूर्णावतार बताया गया है। पद्मपुराण में विष्णु के सहस्र नाम दिए हैं, जिनमें बीस से अधिक नाम परशुराम जी के है। अतः प्रमाणित है कि वे भगवान विष्णु के अवतार थे।

ये भृगुवंश में उत्पन्न हुए, जिसका वर्णन श्रीयुत् रामचन्द्र शर्मा शास्त्री जी की रचना ''भगवान श्री परशुराम'' में विस्तार से मिलता है। ब्रह्मा जी के दस मानस पुत्र हुए हैं, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, कतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद। इनमें भृगु जी से च्यवन ऋषि हुए, उनसे आप्रवान हुए, इनके पुत्र उर्व थे, उर्व से ऋचीक हुए, जिनके पुत्र जमदग्नि हुए। इन्हीं जमदग्नि ऋषि से परशुराम जी का जन्म हुआ।

यदि मातृपक्ष पर विचार करें तो कुश से कुशनाभ हुए, उनके पुत्र थे गाधि, गाधि के पुत्र थे विश्वामित्र और पुत्री थी सत्यवती। यही ऋषि ऋचीक की पत्नी बनी और जमदग्नि की माता। जमदग्नि की पत्नी रेणुका थीं, जिनका पहले का नाम कामली भी था, वे इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा प्रसेनजित, जिन्हें रेणु भी कहा जाता था, की पुत्री थीं। इन्हीं रेणुका से परशुराम जी का जन्म हुआ। परशुराम जी उनके पांचवें और सबसे छोटे पुत्र थे, अन्य चार अग्रजों के नाम थे - वसु, वसुनाथ, वसुमेण और विश्ववसु।

जमदग्नि जी का आश्रम पंचनद प्रदेश में सरस्वती नदी के किनारे था, आधुनिक पंजाब ही वस्तुतः पंचनद प्रदेश था। सरस्वती नदी अब लुप्त हो चुकी है। इसी आश्रम में बैसाख शुक्ल तृतीया को परशुराम जी का अवतार हुआ। निर्णयसिंधु में उल्लेख है -

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ ।
निशाया प्रथमें यामें रामाख्यः समये हरिः ।।
स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहु संस्थिते ।
रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम् ।।

विशिष्ट व्यक्ति विशिष्ट समय ही जन्मते हैं, उस समय पुनर्वसु नक्षत्र में जब छः ग्रह अपने उच्च स्थानों पर थे, अर्थात सूर्य मेष में, चन्द्र वृष में, बुध कन्या में, बृहस्पति कर्क में, शुक्र मीन राशि में और शनि तुला राशि में थे। ऐसा संयोग दुर्लभ होता है।

महर्षियों में भृगु का स्थान अद्वितीय है, स्वयं श्रीकृष्ण ने गीता में अपनी विभूतियों की गणना करते हुए भृगु ऋषि को अपनी विभूति बताया है। - -

"महर्षीणां भृगुरहं" । त्रिदेवों में सर्वश्रेष्ठ कौन हैं, इसकी परीक्षा के लिए भृगु को ही चुना गया था। उन्होंने विष्णु के वक्षस्थल पर चरण - प्रहार किया, किन्तु उद्वेलित न होकर उनका पैर सहलाने लगे, तब उन्हें त्रिदेव में सर्वश्रेष्ठ माना गया। दक्ष प्रजापति द्वारा किए गए यज्ञ का आचार्यत्व भृगु जी ने ही सँभाला था।

वे स्पष्टवादी थे और अन्याय सहन नहीं करते थे। इन्द्र की अनुपस्थिति में स्वर्ग पर जब राजा नहुष ने राज्य भार सँभाला तब वे इन्द्राणी को पाने को उत्सुक हो गए। इन्द्राणी ने उन्हें सप्तर्षियों की पालकी में बैठकर आने का सुझाव दिया, इस पालकी पर बैठे काम - पीड़ित नहुष जब बार-बार सर्प-सर्प (चलो-चलो) कहने लगे तो भृगु जी ने क्रोध में आकर उन्हें सर्प बन जाने का शाप दे दिया। वैसे तो महर्षि सभी वेद-वेदांगों के ज्ञाता थे, किन्तु अथर्ववेद पर उनका विशेष अधिकार था। अथर्ववेद में भृगु और अंगिरा ऋषि की ही प्रधानता है। ज्योतिष विद्या के वे प्रवर्तक माने जाते हैं, भृगु संहिता ज्योतिष का शीर्षस्थ ग्रन्थ है।

परशुराम जी ने पिता की आज्ञा से हिमालय पर जाकर शिवजी की आराधना की, प्रसन्न हुए महेश्वर से दिव्यास्त्रों की प्राप्ति की और अप्रतिम धनुर्धर होने का वर पाया। शिव जी ने उन्हें विजय नामक धनुष, अक्षय तूणीर, त्रैलोक्य विजय नामक अभेद्य कवच और अप्रतिहत गति दिव्य रथ दिया। भगवान शंकर ने उन्हें अति दिव्य परशु भी प्रदान किया जो अमोघ तथा अभेद्य था-

यदि देव प्रसन्नत्वं वरार्होस्मि च यद्यहम् ।
भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः ।।
अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तो भ्यधिको भवेत् ।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेत् त्वत्प्रसादतः ।।

परशुराम जी ने अपने पिता जमदग्नि जी की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी माता का शिरच्छेद कर दिया था। पिता के प्रसन्न होने पर उन्होंने माता के पुनर्जीवन का वरदान माँग लिया।

कथा यह है कि एक बार नदी से जल लाने गयीं रेणुका जी ने नदी के उस पार यार्तिकावत देश के राजा चित्ररथ को अपनी युवा पत्नी के साथ विहार व काम क्रीड़ा करते देखा और उनके मन में विषय सुख की कल्पना से विकार आ गया। वे नदी के ठण्डे जल में बैठ गई मन शांत होने पर आश्रम लौटीं तो ऋषि ने देरी से आने का कारण पूछा और घटनाक्रम योग से जानकर रेणुका के वध की आज्ञा दे डाली। शेष चारों पुत्र इस राक्षसी कर्म को करने से मना कर चुके थे तब परशुराम ने यह किया, किन्तु प्रसन्न हुए पिता से तुरंत ही यह वरदान माँग लिया-

जहीमां मातरं पापां मा च पुत्र व्यथां कृथाः।
तत आदाय परशुरामो मातुः शिरोऽहरत् ।।१४।।
स वव्रे मानुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै ।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातृणां प्रकृतिं तथा ।।१६।।

- ११६ वाँ अध्याय वनपर्व।

हैहय वंश का नाम सहस्त्रजित के पौत्र शतजित के पुत्र हैहय के नाम पर पड़ा। हैहय का पुत्र धर्म, धर्म से धर्मनेत्र, धर्मनेत्र से कुन्ति, कुन्ति से सहजित और सहजित के पुत्र महिष्मान ने माहिष्मती को बसाया। महिष्मान के भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्य के दुर्दम और दुर्दम से धनक हुए। धनक के पुत्र कृतवीर्य से महापराक्रमी सहस्त्रार्जुन उत्पन्न हुआ। कृतवीर्य का पुत्र होने से वह कार्तवीर्य कहलाता था।

- अथानूप पतिर्वीरः कार्तवीर्योतऽभ्यवर्तत। १६/११६ अध्याय वनपर्व।

इनका राज्य अनूप देश पर था इसकी सीमाएं पूर्व में चंबल, पश्चिम में समुद्र तक, दक्षिण में नर्मदा तथा उत्तर में आनर्त उ. गुजरात बताई जाती है। माहिष्मती वर्तमान में महेश्वर नगर ही था जो मध्य प्रदेश के धार जिले में नर्मदा के उत्तरी बाएं तट पर है। यहीं प्रसिद्ध पंडित मण्डन मिश्र रहते थे जिन्हें अदिशंकराचार्य ने शास्त्रार्थ में पराजित कर सुरेश्वराचार्य नाम से अपना शिष्य बना लिया था।

सहस्त्रार्जुन के पूर्वजों के यहाँ भृगुवंशी ऋषियों का बड़ा मान था, स्वयं सहस्त्रार्जुन ने तपस्या कर दत्तात्रेय को प्रसन्न कर शक्ति व सामर्थ्य पाई। हजार भुजाएं सारी पृथ्वी की विजय आदि के वरदान उसे दत्तात्रेय से मिले किन्तु शक्तिमान होने पर वह मदोन्मत्त हो गया और अत्याचारी बन गया -

दत्तात्रेय प्रसादेन विमानं कांचनं तथा।
ऐश्वर्यं सर्वभूतेषु पृथिव्या पृथ्वीपते।।१२
अव्याहत गतिश्चैव रथस्तस्य महात्मनः।
रथेन तेन तु सदा वरदानेन वीर्यवान् ।।१३

- ११५ वाँ अध्याय वनपर्व

ममर्द देवान् यक्षांश्च ऋषींश्चैव समन्ततः ।
भूतांश्चैव स सर्वांस्तु पीडयामास सर्वतः ।।१४११६ **वाँ अध्याय वनपर्व**

वह इतना शक्तिशाली था कि एक बार अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते हुए उसने नर्मदा का प्रवाह रोक दिया पानी उलट कर बहने लगा। नर्मदा तट की बस्तियाँ डूबने लगी, तट पर शिविर डाले पड़ी रावण की सेना में अव्यवस्था फैल गई। रावण क्रुद्ध हो सहस्त्रार्जुन को ललकारने लगा। दोनों में युद्ध हुआ तो

सहस्त्रार्जुन ने खेल-खेल में रावण को जीत लिया, बाँध कर राजधानी ले आया तब पुलस्त्य ऋषि के अनुरोध पर उसे छोड़ दिया।

सहस्त्रार्जुन एक बार ऋषि जमदग्नि के आश्रम में सेना सहित पहुँचा जहाँ उसका सपरिवार आतिथ्य महर्षि ने किया। राजा को आश्चर्य हुआ, उसके मंत्री चंद्रमुख ने बताया कि ऋषि के पास कामधेनु है जिससे वे जो चाहें प्राप्त कर सकते हैं। यह जानकर क्षुब्धमना राजा ने ऋषि से कामधेनु माँगी, अस्वीकृति मिलने पर वह बलपूर्वक कामधेनु छीन ले गया -

प्रमथ्य चाश्रमान् तस्माद्धोमधेनोस्तथा बलात् ।
जहार वत्सं क्रोशन्त्या बभंज च महाद्रुमान् ।। **२१/११६ वनपर्व**

यह कथा बहुत प्राचीन है और सूत्र रूप के वेदों में भी वर्णित है -

ये सहस्त्रमराज्ञासन् दशशताः उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ।

- अथर्ववेद संहिता कांड ५ मंत्र १०

जब परशुराम को इस घटना का पता चला तो वे गाय लाने और पिता का प्रतिशोध लेने सहस्त्रार्जुन की राजधानी की ओर चल पड़े। हैहयराज ने १७ अक्षौहिणी सेना उन्हें रोकने के लिए संग्राम में झोंक दी किन्तु अकेले परशुराम ने उन सबको नष्ट कर दिया -

स मृत्यु वशमापन्नं कार्तवीर्यमुपाद्रवत् ।
तस्याथ युधिविक्रम्य भार्गवपरवीहा ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैर्बाहून परिधसन्निभान् ।
सहस्त्र सम्मितान् राजा प्रग्रह्य रुचिरं धनुः ।।

- २१, २२/११६ वनपर्व

एक अक्षौहिणी सेना का प्रमाण है- २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, ६५,६१० घोड़े, १,०६,३५० पैदल कुल २,१८,७००

एक प्रलयंकारी लोमहर्षक युद्ध में परशुराम ने अत्याचारी और क्रूरकर्मा सहस्त्रार्जुन की भुजाओं को परशु से काट डाला और मार डाला। अत्याचार का अंत हुआ।

सहस्त्रार्जुन के वध के उपरान्त पिता ने आज्ञा दी कि राम तुम तीर्थाटन और तपस्या करो और भयानक हिंसा के पश्चात् मन को निर्मल और प्रसन्न करो, उनकी

आज्ञा शिरोधार्य कर वे तीर्थाटन को चले गए। इसी बीच सहस्त्रार्जुन के पुत्रों ने उत्पात मचाया और एक दिन ध्यानमग्न जमदग्नि का आश्रम में आकर वध कर दिया। परशुराम को जब यह दुखद वृत्तांत ज्ञात हुआ तो उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने का प्रण किया -

आश्रमस्थं विना रामं जमदग्नि मुपाद्रवन् ।
ते तं जघ्नुर्महावीर्यमयुध्यन्तं तपश्विनम् ।।७।।

संक्रुद्धनऽतिवलः संख्ये शस्त्रमदायवीर्यवान् ।
जघ्निवान् कार्तवीर्यस्य सुतानेकोन्तकोपमः ।।८।।

त्रिसप्तकृत्वः पृथ्वी कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समंतपंचके पंचचकार रुधिरहृदान् ।।६।।

- ११७वाँ अध्याय वनपर्व

समंत पंचक क्षेत्र (आधुनिक कुरूक्षेत्र) में पाँच रक्तपूर्ण सरोवरों से अपने पिता व पितरों को जलांजलि दे रहे परशुराम जी से पिता व पितर प्रकट हो कहते हैं कि ब्रह्म हित कर चुके पृथ्वी पर व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, अत्याचारी नष्ट हो चुके हैं, अब चित्तशुद्धि हेतु तपस्या करो। परशुराम जी सम्पूर्ण धन याचकों को देकर और सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप ऋषि को देकर तपस्या करने महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं -

यस्मिन् यज्ञे हि भूर्दत्तां कश्यपाय महत्मने ।
सपर्वत वनो द्देशा दक्षिणार्थे स्वयं भुवा ।।१८।।

-११४वाँ अध्याय वनपर्व

त्रेता युग में रामावतार के पश्चात जब शिवजी के धनुष को सीता स्वयंवर के अवसर पर तोड़ते हैं तो उसकी प्रचंड ध्वनि सुन क्रुद्ध ऋषि परशुराम जनकपुरी आते हैं, कोप करते हैं, किन्तु परीक्षा लेने के लिए राम से अपना धनुष चढ़ाने को कहते हैं और राम के ऐसा करने पर वे जान लेते हैं कि अगला विष्णु अवतार राम के रूप में हो चुका है तो अपनी अवतार शक्ति का संवरण कर वह दायित्व वर्तमान अवतार राम पर छोड़ आर्शीवाद देकर पुनः तपस्यार्थ प्रस्थान कर जाते हैं। रामचरित मानस के बालकांड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस घटना को बड़ा रोचक रूप दिया है -

गौर शरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ।।

शीश जटा शशि बदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुण होइ आवा ।।
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ भाल मृगछाला ।।
कटि मुनिबसन तून दुई बांधे। धनु सर कर कुठारु कल कांधे ।।

मैं कैसा ब्राह्मण हूँ यह वे राम से कहते हैं -

चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू ।।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भये पशु आई ।।
मैं एहि परशु काटि बलि दीन्हें। समर जग्य जब कोटिन्ह कीन्हें ।।

द्वापर युग में हमें पुनः उनके दर्शन होते हैं। भीष्म को शस्त्रविद्या सिखाते हैं, द्रोण को धनुर्वेद का सारा ज्ञान और दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं और कर्ण भी अपना परिचय छिपा कर उनसे महेन्द्रगिरि पर धनुर्वेद की शिक्षा लेते हैं।

द्रोण उनके पास तब जाते हैं जब वे ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान कर रहे होते हैं। द्रोण के पहुँचने तक सारा धन समाप्त हो जाता है तो द्रोण धनुर्वेद के ज्ञान की याचना करते हैं और परशुराम जी उन्हें कृतार्थ कर देते हैं -

स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परंतपम् ।।
सर्वशस्त्रभृतां विप्रं सर्वज्ञानभृतां वरम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन् दित्सन्तं वसु सर्वशः ।।५१।।

ततो महेन्द्रमासाद्य भारद्वाजो महातपाः ।
क्षातं दान्तममित्रघ्नमपश्यद् भृगुनन्दनम् ।।५४।

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्राददादस्त्राणि भार्गवः ।
स रहस्य व्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ।।

वे क्षत्रिय राजाओं की भाँति भूमि को अपनी भोग्या नहीं समझते वे अपने आपको भूपति भूजानि अवनीश जैसे हेय और अहंकारजन्य विशेषण नहीं लगाते क्योंकि उनके लिए धरणी देवी है।

भीष्म द्वारा अपहृत अपने प्रेमी शाल्व से अस्वीकृत निराश काशिराज कन्या अम्बा अपने दुःख निवारण के लिए कोई सहारा न पाकर परशुराम जी के पास जाती है। वहाँ वे उसे आश्वासन देते हैं कि मैं तुम्हें भीष्म के पास भेज दूँगा, वह मेरी बात मानेगा, मेरा शिष्य है और यदि नहीं मानेगा तो मैं उसे रणभूमि में शस्त्राग्नि में जला दूँगा। वे आगे कहते हैं कि अब मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करता किन्तु ब्राह्मणों

की प्रार्थना पर उनके कार्य के लिए ही ऐसा करता हूँ। अकृतव्रण जब उन्हें कहते हैं कि शरणागत कन्या का उपकार सर्वथा उचित है तो राम को अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा का स्मरण हो आता है-

शरणार्थे प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ।
न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन् कथंचन् ।।

भीष्म अम्बा को ग्रहण करने की आज्ञा को अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि वे तो अखण्ड ब्रह्मचर्य में स्थित थे। बात को लेकर दोनों में भयानक युद्ध होता है जब भीष्म कहते हैं कि गुरुदेव आपके पास रथ, घोड़े, कवच, सारथी और ध्वज आदि नहीं है तो युद्ध रथ पर चढ़ कैसे करूँ तो परशुराम उन्हें उत्तर देते हैं-

रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदा सदश्ववत् ।।३/१७६

- अम्बोख्यान उद्योगपर्व

सूतश्चमातरिश्वा वै कवचं वेद मातरः ।
सुसंवीतो रणेताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ।।४/१७६।।

यह भयावह युद्ध कई दिन चलता है, किन्तु अनिर्णीत रहता।

यह भी वर्णन है कि वनवास के दौरान पाण्डव गंगासागर से होते हुए कलिंग देश गए थे जहाँ लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को बताया कि यही कलिंग देश है, यहाँ वैतरिणी नदी है, कलिंग देश में ही महेन्द्र पर्वत है, जहाँ पर परशुराम जी का आश्रम है। इस आश्रम में के भृगु, अंगिरा, वशिष्ठ, कश्यप आदि गोत्रों के तपस्वी तपस्या करते हैं। अकृतव्रण युधिष्ठिर के पूछने पर बताते हैं कि भगवान परशुराम चतुर्दशी और अष्टमी को ही तपस्वियों को दर्शन देते हैं। इस अवसर पर अकृतव्रण युधिष्ठिर को परशुराम जी की कथा भी सुनाते हैं। महाभारत युद्ध से पूर्व भावी विनाश को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर परशुराम जी लोकमंगल के लिए हस्तिनापुर जाते हैं और दंभोद्भव की कथा सुनाकर उसे रहस्य बताते हैं कि अर्जुन और कृष्ण नर और नारायण के अवतार हैं, उन्हें जीतना असंभव है। वे दुर्योधन को युद्ध के दुष्परिणामों से सावधान करते हैं।

परशुराम जी परम शिवभक्त थे, इसका प्रमाण मिलता है ब्रह्मवैवर्त पुराण की कथा से, जिसमें वर्णित है परशुराम जी शिवदर्शनार्थ कैलाश पर्वत पर जाते हैं, गणेश जी जो कि रक्षक के रूप में वहाँ नियुक्त हैं, उन्हें अन्दर नहीं जाने देते, युद्ध छिड़ जाता है, वे परशु से गणेश जी पर प्रहार करते हैं, जिससे उनका एक दाँत कट जाता है। तभी से वे एकदंत कहलाने लगे।

पराक्रम में वे कार्तिकेय के समान थे, कथा है कि कार्तिकेय ने क्रौञ्च पर्वत

को वेध दिया। तब अपना कौशल दिखाने के लिए परशुराम ने भी उसे बाणों से वेध दिया। कालिदास कृत मेघदूत में इस ओर संकेत दिया गया है -

प्रालेयाद्रे रूप तटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान् ।
हंसद्वार भृगुपतियशो वर्त्म क्रौञ्चरन्ध्रम् ।। **पूर्वमेघ - ५८**

इस घटना का वर्णन केशव दास ने रामचन्द्रिका में भी किया है-

जव हन्यो हैहयराज इन बिन छत्र छितिमण्डल कर्यौ ।
गिरि बेधि षनमुख जीति तारकनन्द को जव ज्यों हर्यौ ।।

सुतमैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वत नन्दिनी ।
वह रेनुका तिय धन्य धरनी में भई जगबन्दिनी ।। **- रामचन्द्रिका**

परशुराम जी आर्य संस्कृति के रक्षक, नायक और प्रतिष्ठाता थे। भारतवर्ष का शायद ही कोई कोना होगा, जो किसी न किसी रूप में परशुराम के चरित्र से संबद्ध न हो। यदि रामतीर्थ उत्तर में है, जहाँ परशुराम जी ने वाजपेय यज्ञ और १०० अश्वमेघ यज्ञ करके सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान में दे दी तो परशुराम कुंड अरूणाचल प्रदेश में है। कहा जाता है कि लोहित नदी में उन्होंने अपना रक्त - रंजित फरसा धोया। रेणुका का मंदिर नासिक में है, जमदग्नि का मंदिर उत्तर काशी में है, महेन्द्र पर्वत उड़ीसा में है तो शूर्परिक क्षेत्र मलावार तट पर है। कथा है कि सारी पृथ्वी दान में देने पर उन्होंने विचार किया कि दान दी हुई वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिए, अतः उन्होंने समुद्र को मालावार तट से पीछे हटाकर नई भूमि प्राप्त की -

उत्सारयित्वा सलिलं समुद्रस्तावदात्मनः। **- ब्रह्माण्ड पुराण**

पुराणों में उल्लेख है कि तपस्यारत ऋषि कलियुग के अंत में जब भगवान कल्कि का अवतार होगा, तब उन्हें शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा देंगे।

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में उन्हें विष्णु का अवतार कहा है। मंदोदरी रावण को समझाते हुए कहती है -

जेहि बलि बांधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा।।

रावण वध के उपरान्त देवतागण श्रीराम की स्तुति करते हुए कहते हैं -

मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परशुराम वपु धरी।।

चीन द्वारा १९६२ में पराजित भारत के निराश जन-मन में पुनः उत्साह, शौर्य और विश्वास जगाने के लिए राष्ट्रकवि दिनकर जी ने सर्वश्रेष्ठ प्रतीक परशुराम जी को ही पाया और परशुराम की प्रतीक्षा की रचना की। वे कहते हैं -

हाँ वही रूप प्रज्ज्वलित विभासित नर का ।
अंशावतार सम्मिलित विष्णु शंकर का ।।
हाँ वही दुरित से सजो न संधि करता है ।
जो संत धर्म के लिए खड़ग धरता है ।।

महाकवि श्याम नारायण पाण्डेय ने अपने महाकाव्य ''परशुराम'' में उनका आवाह्न करते हुए लिखा है -

तू महाअथर्वण ऋषि ऋचीक की घोर तपस्या का फल है ।
तू प्रणव मंत्र जैसा पवित्र आर्यवत साधना का वल है ।।

''प्रसन्न राघव'' में कवि जयदेव ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है -

मौर्वी धनुस्तनुरियं च विभर्ति मौञ्जी ।
बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः ।।
धाराङ्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च ।
तद्वीर शान्तरसयोः किमयं विकारः ।।

कालिदास ने उनका उल्लेख रघुवंश में इस प्रकार किया है -

क्षत्र शोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः । ११/६०

उत्तर साकेत में महाकवि सोहन लाल रामरंग जी ने राम की यात्रा के दौरान परशुराम आश्रम जाने पर दोनों रामों का मिलन कराया। इस अवसर पर परशुराम के उद्‌गार दर्शनीय हैं -

मिला भीत जन नमन किन्तु हर सका न भव भय ।
किये पराजित अमित न परकर सका हृदय जय ।।

हैं सुधार संहार मार्ग दो जगदुद्धारक।
हृदय विमोहक एक दूसरा हृदय विदारक ।।

परशुराम रह गया इसी से केवल मुनि बन ।

और राम बन गए सकल मुनि निकर प्राणधन ।।

जीत भूमि इक्कीस बार कर सका न शासन ।
राम जीत दो भूप चलाते जगत प्रशासन ।।

४. कृपाचार्य

कृपाचार्य भी सात चिरंजीवियों में एक माने जाते हैं। वे कृपी के भाई तथा अश्वत्थामा के मामा थे। गौतम ऋषि के पुत्र शरद्वान थे, जो शर विद्या में बड़े प्रवीण, थे, शास्त्रों में भी पारंगत थे। उनकी तपस्या से विचलित हो इन्द्र ने जानपदी नामक अप्सरा को उनके तप-विघ्न हेतु भेजा। उसे देख शरद्वान का वीर्यपात हो गया, जो शरकण्डों के वन में गिरा, और दो भागों में विभक्त हो गया, उससे एक बालक व एक बालिका का जन्म हुआ। शरद्वान तो तपस्या करने चले गए किन्तु दैवयोग से मृगया करते हुए हस्तिनापुर नरेश शान्तनु के सेवकों को यह शिशु युगल मिला, वे करुणावश उन्हें नगर में ले आए और अपने बालक, बालिका की तरह उनका पालन पोषण किया, ये कृप और कृपी कहलाए।

कृप बड़े धनुर्वेदी और शास्त्रज्ञ थे।, जब वे बालक ही थे, तब उनके पिता शरद्वान ने योगबल से सारा वृत्तांत जानकर अपने बालक और बालिका को पहचान लिया और गुप्त रूप से नगर में आकर बालक को धनुर्वेद तथा वेद और वेदांगो की शिक्षा दी। वे कुछ ही समय में परम विद्वान और अनुपम धनुर्धर बन गए। वे हस्तिनापुर में कुरुवंश के धर्मगुरु बने।

उनकी बहन कृपी का विवाह द्रोणाचार्य से हुआ। जब द्रोणाचार्य विपन्न अवस्था में थे और उन्हें उनके ही बालसखा द्रुपद ने अपमानित किया तो वे काम्पिल्यपुरी से हस्तिनापुर चले आए और कृपाचार्य के ही घर गुप्तरूप से तब तक निवास किया, ५.बतक वे कौरव कुमारों के आचार्य नहीं बन गए। इससे पूर्व कृपाचार्य ही कुरु कुमारों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा देते थे। कृपाचार्य बड़े धर्मज्ञ थे और निर्लिप्त भाव से हस्तिनापुर में रहते थे, वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे और संन्यासियों की तरह जीवन व्यतीत किया। अश्वत्थामा के प्रति उन्हें विशेष लगाव था। महाभारत युद्ध में वे कौरवों की ओर से वीरतापूर्वक लड़े। उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता था, अर्जुन के अतिरिक्त वे किसी के लिए साध्य नहीं थे। महाभारत के अन्तिम १८ वें दिन अश्वत्थामा ने रात्रि में जब पाण्डव शिविर पर आक्रमण की योजना बनाई तो कृपाचार्य ने पहले अश्वत्थामा को उस भयानक योजना से विरत रहने का उपदेश दिया और तरह तरह से समझाया, किन्तु वह दुराग्रह के कारण माना नहीं। अंत में जब वह अकेला ही इस अनीतिपूर्ण और दुस्साहासिक कार्य के लिए चल दिया तो विवश होकर कृपाचार्य को भी उसके पीछे जाना पड़ा। कृप तथा कृतवर्मा शिविर के द्वार पर खड़े रहे और विनाशकारी कृत्य

अश्वत्थामा ने अकेले ही शिविर में प्रवेश करके किया। कृप और कृतवर्मा ने शिविर द्वार से बाहर किसी को नहीं आने दिया और बाहर भागने की कोशिश करने वाले योद्धाओं को मार डाला। चूंकि यह कार्य अश्वत्थामा के नेतृत्व में किया गया था, अतः कृप और कृतवर्मा को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया गया। कृप कौरवों के आचार्य बने रहे और परीक्षित के भी गुरू बने।

कृपाचार्य की उत्पत्ति का वर्णन महाभारत के आदि पर्व के सम्भव पर्व के १२६वें अध्याय में किया गया है। कुछ श्लोक उद्धृत हैं-

महर्षेगौतमस्यासीच्छरद्वान नाम गौतमः ।
पुत्र किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ।।२।।

ततो जानपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः ।
प्राहिणोत् तपसो विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ।।६।।

सा हि गत्वाऽश्रमं तस्य रमणीयं शरद्वतः ।
धनुर्वाणधरं वाला लोभयामास गौतमम् ।।७।।

जगाम रेतस्तस्य शरस्तम्वे पपात च ।
शरस्तम्वे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ।।१३।।

तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वत; ।
मृगयां चरतो राजः शान्तनोस्तु यदृच्छया ।।१४।।

५. द्रोणाचार्य

द्रोणाचार्य भरद्वाज ऋषि के अयोनिज पुत्र थे। भरद्वाज ऋषि का आश्रम गंगाद्वार प्रदेश में था, वे महान विद्वान और शास्त्रवेत्ता थे। एक दिन गंगा तट पर जब वे स्नान करने गए तो वहाँ घृताची नामक अप्सरा को स्नान के बाद कपड़े पहनने का उद्यम करते देखा, उसके वस्त्र पवन से उड़ रहे थे, उसे देख उनका वीर्यपात हो गया, जो उन्होंने एक द्रोण (पात्र) में रख लिया। इसी द्रोण से कालक्रम से एक बालक की उत्पत्ति हुई, जिसका नाम भी द्रोण रखा गया। वालक श्याम वर्ण का बलिष्ठ शरीर वाला और बहुत कुशाग्र बुद्धि था। पिता ने उन्हें ऋषि अग्निवेश के पास विद्या अध्ययन के लिए भेजा, जहाँ उन्होंने विभिन्न शस्त्रों की शिक्षा ली, गुरू ने उन्हें आग्नेयास्त्र भी सिखाया। इसी आश्रम में पांचाल राजा पृषत्

का पुत्र द्रुपद भी पढ़ता था और दोनों सहपाठियों में बड़ी मित्रता थी। महाभारत में यह वर्णन इस प्रकार मिलता है-

गंगा द्वारं प्रति महान् बभूव भगवान्नृषि ।
भरद्वाज इति ख्यातः सततं संशितव्रतः ।।

ददर्शाप्सरसं साक्षाद् घृताचीमाप्लुतामृषि ।
रूप यौवन सम्पन्नां मददृप्तां मदालसाम् ।।

ततः समभवद् द्रोणः कलशे तस्य धीमतः ।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदांगानि च सर्वशः ।।

भरद्वाज सखा चासीत् पृषतो नाम पार्थिवः ।
तस्यापि द्रुपदो नाम सतदा समभवत् सुतः ।।

स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्थिवोः ।
विक्रीड़ाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ।।

अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान् ।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।।

अग्नेस्तु जातः स मुनिस्ततो भरत सत्तम।
भरद्वाज तदाग्नेयं महास्त्र प्रत्यपादय ।।

विद्याध्ययन के पाश्चात द्रोण अपने पिता के आश्रम में चले गए और तपस्यालीन हो गए। उनके पिता भरद्वाज ऋषि ने जब समाधि लेली तो द्रोण ने एकाकी ही बहुत समय तक तप किया, वे शस्त्राभ्यास भी करते रहे। एक दिन पितरों ने उन्हें दर्शन दिए और विवाह की आज्ञा दी। तव द्रोण ने हस्तिनापुर के राजा शान्तनु द्वारा पालिता कृप की बहन कृपी से विवाह किया जो व्रत अनुष्ठान, होम आदि में बड़ी प्रवीण और परम साध्वी थी। इस दिव्य दम्पत्ति से कालक्रम से अश्वत्थामा की उत्पत्ति हुई जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़े जैसा उच्च घोष किया, तव आकाशवाणी हुई कि यह बड़ा विलक्षण और प्रतापी बालक है-

शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोंऽन्वविन्दत ।
अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ।।

अलभद् गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च ।
स जात मात्रो व्यनदद् यथैवोच्चैःश्रवा हयः ।।

द्रोण को ज्ञात हुआ कि परशुराम अपना सर्वस्व सुपात्र विप्रों को दान कर तपस्या करने महेन्द्र पर्वत पर प्रस्थान करने वाले हैं। द्रोण भी उनसे दान प्राप्ति हेतु गए किन्तु तब तक उनके पास धन नहीं बचा था, याचक द्रोण को देखकर परशुराम के मन में विषाद हुआ किन्तु वे ऐसे याचक नहीं थे। उन्होंने उनसे दिव्यास्त्र विद्या की याचना की और प्रसन्न परशुराम ने उन्हें सरहस्य धनुर्वेद का ज्ञान देकर कृतार्थ किया-

स रामस्य धनुर्वेद दिव्यान्यस्त्राणि चैव ह ।
श्रुत्वा तेषु मनश्चक्रे नीति शास्त्रे तथैव च ।।

ततो महेन्द्रमासाद्य भारद्वाजो महातपाः ।
क्षातं दान्तममित्रघ्नमपश्यद् भृगुनन्दनम् ।।

अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव ।
सप्रयोग सरहस्य दातुमर्हस्यशेषतः ।।

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्तै प्रादादस्त्राणि भार्गव ।
सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ।।

द्रोण वापस आए तो देखा कि आश्रम में एक गाय तक नहीं है, बालक अश्वत्थामा दूध के लिए रोता है। यह देख द्रोण को मर्मान्तक पीड़ा हुई और वे धर्मयुक्त दान के लिए स्थान-स्थान पर गए, किन्तु उन्हें कहीं गाय की प्राप्ति नहीं हुई। सेवाधर्म वे स्वीकार नहीं कर सकते थे, वृत्तिभोगी नहीं बन सकते थे, कुपात्र से दान लेना उन्हें स्वीकार नहीं था, अतः उनके ध्यान में अपने बालसखा की बातें आयीं, जो आज पाञ्चाल देश का राजा था। विद्यार्थी द्रुपद कहा करता था- हे मित्र जो कुछ मेरा है वह तुम्हारा भी होगा। वे इसी विश्वास पर द्रुपद के पास गए, किन्तु द्रुपद ने उनका अपमान कर दिया-

गो क्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ।
अश्वत्थामारुदद् बालस्तन्मे संदेहयद् दिशः ।।

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाज प्रतापवान् ।
अब्रवीत पार्थिव राजन् सख्यांविदिमामिह ।।

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा ।
न शूरस्य सखा क्लीवः सखिपूर्व किमिष्यसे ।।

दुःखी द्रोण ने मन ही मन कुछ निश्चय किया और काम्पिल्यपुरी से हस्तिनापुर चले आए जो कुरुओं की राजधानी थी, वहाँ वे कृप के घर पर गुप्त रूप से रहने लगे।

ततोऽस्य तनुजः पार्थान् कृपस्यानन्तरं प्रभुः ।
अस्त्राणि शिक्षयामास नाबुध्यन्त च तं जनाः ।।

एक दिन उद्यान में कीड़ारत कौरव कुमारों की बीटिका शुष्क कुएं जा गिरी, वे निराश थे, तब द्रोण ने केवल सींको की सहायता से कुएं से बीटिका निकाल दी। विस्मित कुमारों ने यह वृत्तांत जब भीष्म पितामह को सुनाया तो वे समझ गए कि वे ब्राह्मण परशुराम शिष्य द्रोण के अतिरिक्त कोई नहीं है। वे बड़े सम्मान के साथ द्रोण को राजभवन ले गए और कुरु कुमारों के शिष्यत्व की याचना की। द्रोण ने उन्हें वचन दिया कि वे राजपुत्रों को महारथी बनाएंगे। यह वचन उन्होंने पूरा किया और इसका प्रमाण भी दे दिया, जब अपने शिष्यों के द्वारा उन्होंने द्रुपद को पराजित करवाकर बंदी बनवा लिया। वहाँ उन्होंने उदारता का परिचय दिया, उत्तर पांचाल राज्य उन्होंने अधिग्रहीत कर लिया, जिसकी राजधानी अहिक्षत्र थी। इसे उन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा को दे दिया और द्रुपद से कहा- चूंकि तुम्हारे अनुसार मित्रता बराबर वालों में होती है, अब हमारी मित्रता स्वीकार करो। लज्जित द्रुपद उनकी उदारता की प्रशंसा करते हुए अपने राज्य चले गए। इस प्रकार गंगा नदी के दक्षिण किनारे से लेकर चम्बल नदी तक फैला क्षेत्र द्रुपद के अधिकार में रहा-

प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप ।
वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ।।

अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ।
अतः प्रियततं राज्ये यज्ञसेन मया तव ।।

राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ।
सखायं मां विजानीहि पांचाल यदि मन्यसे ।।

अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ।

द्रुपद को सदैव इस बात की वेदना रही और उसने यज्ञानुष्ठान से एक दिव्य तेजस्वी पुत्र धृष्टद्युम्न तथा अग्नि से निकली पुत्री द्रौपदी याज्ञसेनी को प्राप्त किया।

यही धृष्टद्युम्न पांचाल सेनापति बने और कुरुक्षेत्र में पाण्डवीय सेना के सेनापति।

द्रोण ने कर्ण और एकलव्य को शिष्य न बनाकर अपनी संकीर्णता का परिचय दिया क्योंकि वे समझते थे कि कुरु कुमारों की अजेयता इसी तरह सुनिश्चित की जा सकती है। महाभारत युद्ध में वे कौरवों की ओर से सम्मिलित हुए और भीष्म पितामह के शरशय्या पर सोने पर ग्यारहवें दिन से लेकर पन्द्रहवें दिन तक अर्थात पांच दिन वे कौरवों के सेनापति रहे। इस प्रकार अठारह दिनों के युद्ध में दस दिनों तक भीष्म सेनापति रहे। यद्यपि वे कौरवों की ओर से लड़ रहे थे फिर भी उन्होंने दुर्योधन को स्पष्ट कर दिया था कि पाण्डव उनके प्रिय शिष्य रहे हैं, वे उन्हें नहीं मारेंगे। हाँ पाण्डव सेना का उन्होंने भीषण संहार किया और पांच दिन में पाण्डव सेना के अनेक महारथियों को उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया, उनके नाम इस प्रकार हैं- शतानीक, दृढ़सेन, युगंधर, क्षेम, सत्यजित, वसुदान, क्षत्रधर्मा कुन्तिभोज, मदिराश्व, सत्यधृति, सूर्यदत्त तथा सुकेतु, विराट तथा द्रुपद।

आचार्य परशुराम और भगवान शिव की भांति अपराजेय थे, तब श्रीकृष्ण ने उनके पुत्रमोह को लेकर एक योजना बनाई तद्नुसार अश्वत्थामा को सौमकों और कैकेयों से लड़ने के लिए दूर ले जाया गया इसी समय भीम ने मालव नरेश इन्द्र वर्मा के अश्वत्थामा नामक हाथी को मार गिराया और वे सिंहनाद करते हुए कहने लगे कि अश्वत्थामा मारा गया। चकित द्रोण को विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने युधिष्ठिर की ओर देखा जो कभी असत्य नहीं बोलते थे। उन्होंने कृष्ण की योजना के अनुसार कहा- "अश्वत्थामा हतोहतः" फिर धीरे से कहा- "नरो वा कुञ्जरः"। अंतिम वाक्यांश शंखधोष में डूब गया। द्रोणाचार्य पुत्रशोध से व्याकुल हो संसार से विरक्त हो गए, समाधिस्थ होकर अपने प्राण त्याग दिए। तभी धृष्टद्युम्न ने आगे बढ़कर सबके द्वारा रोके जाने पर भी उनकी श्वेत जटाएं पकड़कर तलवार से उनका शिर काट लिया। चार सौ वर्ष की अवस्था में धनुर्वेद के साक्षात विग्रह आचार्य द्रोण भूलोक से प्रयाण कर गए-

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ।
संग्रामे क्रियतां यत्नों ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।।४३।।

पाण्डवेभ्य शिवं वोऽस्तु शस्त्रमुत्सृजाम्यहम् ।४४।।

उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ।
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।।४५।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः।
स्मरित्वा देव देवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ।।५२।।

दिवमक्रामदाचार्यः साक्षात् सद्भिदुराक्रमात् ।
धृष्टद्युम्नस्तु ततः राजन् भारद्वाज शिरोऽहरत् ।।७०।।

कवि भट्ट नारायण ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक वेणीसंहारम् में द्रोण की मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया है-

अश्वत्थामा हत इति पृथासुनुना स्पष्टमुक्तवा ।
स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।।

तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः ।
शास्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ।।

गुप्त जी ने "जय भारत" में द्रोणाचार्य के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है-

आगत जन था एक साथ ही सुभट सुपंडित ।
क्षात्र- तेज से और ब्राह्म-गौरव से मण्डित ।
दण्ड छोड़ कोदण्ड कमण्डलु धार चला था ।
परशुराम यदि न था उन्हीं का अनुज भला था ।।

एकलव्य का अँगूठा माँगकर वे जड़ीभूत और अत्यंत दुःखी हो जाते हैं-

दिया परक्षण उसने गुरू को आप अँगूठा काट ।
जड़ी भूत रह गए देखते वे दारुण विभ्राट ।।

आँखों में आंसू भर आए कण्ठ हुआ अवरुद्ध ।
बड़ी देर तक बोल न पाए वे प्रख्यात प्रबुद्ध ।।

धनुर्धनी दानी भी तुमसा नहीं दीखता अन्य ।
नाम मात्र का गुरू होकर भी मैं हूँ तुमसे धन्य ।।

हुआ भले अप्रतिम धनुर्धर आज धनंजय पार्थ ।
किन्तु योग्यता के सब भागीहै वह बात यथार्थ ।।

डॉ. राम कुमार वर्मा ने अपने काव्य "एकलव्य" में द्रोण के मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण किया है-

किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी है,
जो कि भूमि पुत्र नहीं किन्तु भूमि पति हैं ।

मृत्तिका के दीपकों का मोह शेष है नहीं,
जो कि बुझते हैं उटजों में एक फूँक से ।
मैं सजा रहा हूँ मणिदीप राजगृह में,
जिसके समीप झंझा झाँक भी न सकता ।।

शिक्षा को परिसीमित करने पर उन्हें मर्मान्तक कष्ट होता है, वे अपने मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

सरला सरस्वती को वाहिका बनाया है,
निज स्वार्थ शिविका का जिसमें मैं बैठा हूँ ।
उसको चला रहा हूँ उग्र कंठ ध्वनि से,
चक्राकार संकुचित राजवीथियों में मैं ।

कृपी

कृप और कृपी जुड़वाँ भाई बहन थे, जिनका जन्म बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में चमत्कारपूर्ण ढंग से हुआ। जैसा कि कृप के जन्म विवरण में दिया गया है, इस शिशु युगल का जन्म गौतम ऋषि के पुत्र शरद्वान ऋषि से हुआ। जब इन्द्र ने जानपदी नामक अप्सरा को उनकी तपस्या में बाधा डालने हेतु भेजा, पुराणों में उल्लेख है कि सरकंडों में पतित और दो भागों में विभक्त ऋषि के वीर्य से बालक-बालिका उद्भूत हुए। स्वभाव के अनुसार जानपदी उन्हें छोड़कर तुरंत ही स्वर्ग लौट गई थी और ऋषि भी तपोविघ्न से खिन्न होकर पुनः तपस्यारत हो गए थे। हस्तिनापुर के अधीश्वर महाराज शान्तनु जब मृगयार्थ अटवी में भटक रहे थे तो उन्हें यह शिशु युगल मिला। वहाँ काला मृगचर्म और धनुष-बाण देखकर उन्होंने अनुमान लगा लिया कि ये ऋषि की संतान हैं। माता-पिता को खोजने पर भी न पाकर शान्तनु उन्हें राजमहल ले आए और पुत्र-पुत्रीवत् पाला। उनके नाम भी कृपावश कृप और कृपी रख दिए। कृपी श्वेत कमल के समान आभा से युक्त थीं, वे अधिक स्थूल शरीर वाली नहीं थी और महाभारत के अनुसार उनके केश भी बहुत बड़े नहीं थे, किन्तु वे बड़ी धार्मिक, सुशील, करुणावान, व्रतधारिणीं, मृदुभाषी और सभी का मंगल चाहने वाली थीं। उनका विवाह महान ऋषि और आचार्य द्रोण से हुआ। इस युगल से जो दोनों ही अयोनिज थे, महावीर और चिरंजीवी अश्वत्थामा का जन्म हुआ।

द्रुपद

कुरु जनपद के पूर्व दिशा में पांचाल राज्य बड़ा विस्तृत और शक्तिशाली राज्य था, जिसपर महाराज पृषत राज्य करते थे। इन्हीं का पुत्र द्रुपद था जिसे शिक्षा हेतु अग्निवेश ऋषि के आश्रम में भेजा गया। इसी आश्रम में भरद्वाज ऋषि के पुत्र द्रोण भी पढ़ते थे। दोनों छात्रों में गहरी मित्रता थी, शिक्षा समाप्ति के पश्चात द्रुपद पांचाल राजधानी काम्पिल्यपुरी को लौट गया और कालक्रम से युवराज और राजा पृषत की मृत्यु के पश्चात पांचालराज बन गया। वह बड़ा मेधावी, मानी और शक्तिशाली राजा था। युद्ध में भी वह अप्रतिम महारथी था। विपन्नता की स्थिति में द्रोण अपने बाल-सखा के पास गए जहाँ उनका उद्देश्य बालक अश्वत्थामा की दूध की व्यवस्था हेतु एक गाय प्राप्त करना था, किन्तु द्रुपद ने बाल्यकाल की मित्रता को महत्व नहीं दिया और क्षुब्ध तथा अपमानित द्रोण कुरुराज्य की राजधानी हस्तिनापुर चले आए। वे कौरव और पाण्डवों के आचार्य बन गए और अपने शिष्यों को उन्होंने महारथी बना दिया। दक्षिणा में उन्होंने द्रुपद को बंदी बना लाने की आज्ञा दी। कौरव इसमें असफल हुए और द्रुपद से हारकर लौट आए तब पाण्डवों ने जाकर द्रुपद को बंदी बना लिया। पराजित द्रुपद के साथ द्रोण ने मित्रवत व्यवहार किया, किन्तु अपने पूर्वकृत अपमान के शोधन हेतु उसका आधा राज्य अर्थात उत्तर पांचाल द्रुपद से ले लिया। यद्यपि उस समय द्रुपद ने उनकी उदारता की प्रशंसा की, किन्तु पराजय का शल्य उसके हृदय में कसकता रहा और उसने यज्ञ करके अग्नि से उद्भूत अपराजेय पुत्र धृष्टद्युम्न और नारी तेज की मूर्ति के समान द्रौपदी (याज्ञसेनी) को प्राप्त किया। द्रौपदी का विवाह स्वयंवर से अर्जुन से हुआ किन्तु कुंती के वचन पालनार्थ उसे पाँच पाण्डवों की पत्नी बनना पड़ा महाभारत युद्ध में द्रुपद स्वभावतः पाण्डवों की ओर से लड़े और द्रोण के हाथों मारे गए।

धृष्टद्युम्न

जैसा कि विवरण दिया जा चुका है वे द्रुपद के पुत्र थे, पांचाल राज्य के युवराज थे, यज्ञ से उद्भूत थे, महावीर और शस्त्रज्ञ थे। महाभारत में उन्हें पाण्डव सेना का सेनापति नियुक्तकिया गया। उन्होंने कौरव पक्ष के अनेक वीरों को हरा दिया था, जिसमें दुर्योधन जैसे महान योद्धा भी सम्मिलित थे। धृष्टद्युम्न का जन्म ही द्रोणकृत अपमान के परिशोधन हेतु हुआ था। युद्ध में द्रोण द्वारा पिता के वध से वह और भी उग्र हो गया और उसने द्रोण-वध की प्रतिज्ञा की जो यथार्थ में पूरी न हो सकी, क्योंकि द्रोण अजेय थे। अश्वत्थामा की मृत्यु का परिवाद सुनकर उन्होंने विरक्त होकर जब शस्त्र त्याग दिए और ध्यानमग्न हो गए, तब धृष्टद्युम्न अपनी तलवार लेकर आगे बढ़ा और ध्यानमग्न द्रोण के केश पकड़कर उनका शिर काट दिया। उस समय उपस्थित सभी महारथियों ने उसे ऐसा करने से चिल्लाते हुए

रोकने का प्रयास किया किन्तु वह नहीं माना। प्रतिज्ञा पूर्ति यथार्थ में नहीं हुई, इसका कारण है कि द्रोण ने उससे पूर्व ही समाधिस्थ होकर अपने प्राण त्याग दिए थे और धृष्टद्युम्न ने केवल उसके मृत शरीर को खण्डित किया था।

जब इस कुकृत्य की सूचना अश्वत्थामा को दी गई तो उसने किसी भी उपाय से धृष्टद्युम्न का वध करने की प्रतिज्ञा की और महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन विजयी पाण्डव जब विजयोत्सव मनाकर सो गए तो अश्वत्थामा ने रात्रि में पांचाल शिविर घुसकर सोते हुए धृष्टद्युम्न को दबोच लिया और पैरों से कुचलकर मार डाला और साथ ही समस्त पांचाल वीरों का भी विनाश कर दिया।

शिखण्डी

शिखण्डी पांचालराज द्रुपद की सबसे बड़ी पुत्री थी, किन्तु उसका लालन-पालन द्रुपद ने पुत्रवत किया तथा उस समस्त शस्त्र संचालन की विद्या भी राजकुमार की भांति प्रदान की गई। उसके विवाह के पश्चात जब अन्य लोगों को यह विदित हुआ कि राजकुमार के रूप में पालित राजपुत्र वास्तव में राजपुत्री है तो स्थिति बहुत असामान्य हो गई और इससे बचने के लिए शिखण्डी ने पितृ-आज्ञा से वन की ओर प्रस्थान किया और पुरुषत्व प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की। अंत में देवकृपा से एक यक्ष की सहायता से शिखण्डी का पुरुषत्व प्राप्त हुआ और वह अपने राज्य वापस लौट आया।

कथा के अनुसार पूर्वजन्म नें भीष्म द्वारा अपहृत काशिराज की बड़ी पुत्री अम्बा ही शिखण्डी के रूप में उत्पन्न हुई ताकि वह भीष्म द्वारा किए गए अन्याय का बदला ले सके। भीष्म यह वृत्तान्त जानते थे, अतः शिखण्डी को अम्बा के रूप में ही देखते थे। इसी कारण उन्होंने शिखण्डी की ओट से भगवान कृष्ण के द्वारा उत्साहित करने पर अर्जुन ने पितामह को बाणों से वेध दिया। यह सब भीष्म की इच्छा से हुआ।

शिखण्डी महारथियों में से एक था और उसने युद्ध में बहुत विक्रम भी दिखाया। अश्वत्थामा जैसे वीर को भी उसने एक-दो अवसरों पर पीड़ित करने का प्रयास किया। अंततः युद्ध के अठारहवें दिन, रात्रि में जब अश्वत्थामा ने पांचालों के शिविर पर आक्रमण किया था, तब शिखण्डी ने पांचाल वीरों और प्रभद्रकों की सहायता से उससे वीरतापूर्वक युद्ध किया, किन्तु अश्वत्थामा अपराजेय महारथी था, उसने बड़े क्रोध में आकर तलवार से शिखण्डी के कटिभाग को काटकर दो टुकड़े कर दिए और इस प्रकार शिखण्डी को वीरगति प्राप्त हुई।

सात्यकि और कृतवर्मा

दुर्योधन और अर्जुन युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण की सहायता मांगने गए तब दुर्योधन ने अपनी बुद्धि के अनुसार द्वारकाधीश की नारायणी सेना मांग ली, और अर्जुन ने

भक्ति का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में मांगा, जबकि कृष्ण ने स्पष्ट कर दिया था कि वे युद्ध में शस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे। नारायणी सेना उस समय अजेय सेना मानी जाती थी और उसमें सात्यकि और कृतवर्मा जैसे महान यादववीर थे। सात्यकि शिनि के पौत्र थे और सत्यक पुत्र थे। उन्होंने भगवान कृष्ण से अनुरोध किया कि वे वहीं रहेंगे, जहाँ भगवान कृष्ण हैं, अतः सात्यकि पाण्डवों की ओर से लड़े और पाण्डव दल के प्रमुख महारथियों में से एक थे। सात्यकि ने अनेक कौरव योद्धाओं को मारा और दुर्योधन जैसे महाबलियों को पराजित किया, अश्वत्थामा से उनकी लड़ाई बराबर पर छूटी।

कृतवर्मा नारायणी सेना के साथ कौरवों की ओर से लड़ा, वह बड़ा दुर्धर्ष योद्धा था। कृतवर्मा भोजवंश में उत्पन्न हुआ था। अश्वत्थामा द्वारा शिविर पर रात्रि में आक्रमण के समय वह उसके साथ था तथा कृप के साथ शिविर के द्वार खड़े होकर शिविर से बाहर भागने वाले वीरों का वध कर दिया। इस दुष्कर्म के पश्चात वह द्वारकापुरी भाग गया।

हरिवंश पुराण में उल्लेख है कि महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष बाद प्रभास नामक तीर्थ क्षेत्र में जब श्रीकृष्ण अनिष्ट से बचने के लिए यादवों को लेकर धार्मिक यात्रा पर गए तो वहाँ नियतिबस यादव वीरों ने प्रतिकूल आचरण किया। ब्राह्मणों को देय भोज्य पदार्थों को मदिरा छिड़क कर वानरों को खिला दिया गया। यादव वीरों ने स्वयं भी मांस और मदिरा ली कृतवर्मा ने सात्यकि की निन्दा की ओर विवाद प्रारम्भ हो गया। जो युद्ध में बदल गया और देखते-देखते पाँच लाख यादव वीर परस्पर लड़ते हुए मारे गए। इसी समय १२५ वर्ष की अवस्था में श्रीकृष्ण भी जरा नामक ब्याध के बाण से आहत होकर देवों की प्रार्थना मानकर अपने धाम को चले गए और बलराम जी तेजस्वी सर्प का रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश कर गए।